उपसंहार

उपसंहार

मार्कण्डेय का स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी-लेखन में अवतीर्ण होना एक महत्त्वपूर्ण घटना है। वे हिंदी कहानी लेखन को जीवन से जोड़ते हुए उसे यथार्थवादी मार्ग पर लाने का स्तुत्य प्रयास करते हैं। स्वतंत्रता, लोकतंत्र, परिवर्तन और विकास की प्रक्रिया में, औद्योगिकीकरण और नगरीकरण के माहौल में मार्कण्डेय का कहानीकार नगरोन्मुखता के मोह से छिटककर उस ओर मुखापेक्षी होता है, जहाँ देश की आबादी का विराट हिस्सा अपनी साँस ले रहा होता है। अर्थात् ग्रामीण जीवन। उनकी कहानियाँ ग्रामीण जीवन को समझने के क्रम में भारतीय जीवन की धड़कनों को जीवंत करने का कार्य करती हैं।

उनकी कहानियों में यथार्थ प्राण तत्त्व के रूप में होता है। वे यथार्थ को प्रत्यक्ष जीवन को इस भाँति प्रतीकित करता हुआ मानते हैं, जहाँ वर्तमान जीवन अपने अतीत और भविष्य की ऐतिहासिक अविच्छिन्नता में उपस्थित रहता है। उनकी यथार्थ-दृष्टि यथार्थ संबंधी धारणा को व्याख्यायित करने वाले साहित्यिक संश्लेषण 'यथार्थवाद' के उस आलोचनात्मक रूप से साम्य रखती है, जो अपनी उपलब्धियों को आत्मसात् कर समाजवादी यथार्थवाद की ओर उन्मुख रहता है। उनकी यथार्थ-दृष्टि यथार्थवाद के उस गतिमान स्वरूप को महत्त्व देती है, जिसमें भावी जीवन के यथार्थ को ग्रहण करने तथा उसका प्रतिबिम्बन करने की अपेक्षाएँ विद्यमान रहती हैं। यही कारण है कि उनकी कहानियों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ 'यथार्थवाद' की उपलब्धियों को आत्मसात् किए हुए तेवर के रूप में प्रस्तुत है।

उनकी कहानियाँ ग्रामीण जीवन का चित्रण करने वाली उस कहानी-धारा की विकसित कड़ी होती है, जिसकी नींव भारतीय औपनिवेशिक समय के हिंदी कहानी-लेखन में माधवराव सप्रे, बंगमहिला (राजबाला घोष), मास्टर भगवान दास आदि प्रमुख कहानीकार रखते हैं तथा जिसकी प्राण-प्रतिष्ठा हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठित कहानीकार प्रेमचंद करते हैं। उनकी कहानियाँ प्रेमचंदोत्तर हिंदी कहानी लेखन की भाववादी परंपरा से अलग एवं स्वातंत्र्योत्तर नगरीय जीवन के आकर्षण के अतिक्रमण से दूर, हिंदी कहानी-लेखन में ग्रामीण जीवन-यथार्थ को उज्जीवित करने वाली उस यथार्थवादी कहानी-धारा को मजबूती से प्रतिष्ठित करती हैं जिसकी परवर्ती दिशा में मिथिलेश्वर, संजीव, जयनंदन, मैत्रेयी पुष्पा, ऋता शुक्ल आदि शामिल हैं।

उनकी कहानियाँ सांप्रतिक दौर के ग्रामीण जीवन और सच को समझने हेतु हमारा आह्वान

करती हैं। उनकी कहानियाँ भारतीय ग्रामीण जीवन की संकल्पना और उसकी खरी समझ रखने के साथ स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन-यथार्थ की समग्र पहचान हेतु ग्रामीण जीवन के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक-सांस्कृतिक पक्षों के संश्लिष्ट चित्रण को महत्त्व देती हैं।

उनकी कहानियों में ग्रामीण समाज की उस तस्वीर को देखा जाता है, जहाँ ग्रामीण जीवन संबंधों का एक जाल होता है। जिसमें नाते-रिश्ते, मूल्य-आदर्श, सामाजिक रीति-नीति आदि परस्पर गुम्फित रहते हैं। जहाँ, स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण समाज के परिवर्तित संदर्भों के रूप में ग्रामीण जीवन का मूल्य-संक्रमण, वैयक्तिक-पारिवारिक संबंध, सामाजिक रीति-नीति और मान्यताएँ एक परिवर्तन की प्रक्रिया में नज़र आती हैं। उनकी कहानियों में चित्रित ग्रामीण समाज के मानवीय मूल्य जहाँ, मूल्यों के शाश्वत रूप में ग्रामीण समाज की चिर-परिचित परंपरित छवि को दर्शाते हैं, वहीं ग्रामीण सामाजिक परिस्थितियों की माँग के अनुसार पारंपरिक मूल्यों का क्षरण और उससे नए मूल्यों के गढ़ने का उपक्रम ग्रामीण समाज की आधुनिक भावी तस्वीर को प्रस्तुत करता है। उनकी कहानियों में समाज के भीतर परिवार की परिकल्पना में बदलाव स्वरूप ग्रामीण परिवार का संयुक्त ढाँचा टूटता दिखाई पड़ता है, जिसके प्रमुख कारणों में वैयक्तिक क्षुद्र सोच और मालिकाई की स्पर्धा-महत्त्वाकांक्षा आदि होते हैं। उनकी कहानियाँ यह दर्शाती हैं कि ग्रामीण समाज के दाम्पत्य संबंधों तथा परिवार के अन्य नाते-रिश्तों में भी विघटन होता है। दाम्पत्य संबंध में पुरुष की सामंती सोच, स्त्री-पुरुष की वैयक्तिक इच्छाओं का प्राबल्य, दाम्पत्य जीवन के उत्तरदायित्व का असंतुलन एवं स्त्री का पुरुष की भोगवादी सोच के प्रति प्रतिकारात्मक रवैया आदि विघटन के प्रमुख कारक सिद्ध होते हैं। जबकि परिवार के अन्य नाते-रिश्तों के संबंधों में विघटन का कारण परिवार के भीतर की गलतफ़ैमियाँ, परिवार के अंतर्बाह्य होने वाले कुचक्र पूर्ण युगीन परिस्थितियों का दबाव आदि होता है। उनकी कहानियों में ग्रामीण समाज और नारी जीवन के रूप में स्त्री के विवाह से जुड़ी विसंगतियाँ, पितृसत्तात्मक संस्कारों के दबाव के फलस्वरूप स्त्री की इच्छा-प्रेमेच्छा, स्वतंत्रता को कुंद करने की प्रक्रिया उसका यौन-शोषण आदि का पहलू ग्रामीण स्त्री की वास्तविक स्थिति को दर्शाता है। इतना ही नहीं, मार्कण्डेय की कहानियों में जातिगत भेद-भाव स्वरूप अश्पृश्यता की भावना तथा सवर्ण जातियों के वर्चस्व आदि की अभिव्यक्ति स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन के एक ज्वलंत सच के रूप उजागर होती है।

ग़ौरतलब है कि उनकी कहानियों में ग्रामीण समाज की विसंगतियों की वास्तविकता का

ऊपरी तौर पर अवलोकन न होकर उसकी तह में प्रवेश करते हुए उसके निहित कार्य-कारण संबंधों की पड़ताल है। उनकी आलोचनात्मक यथार्थ-दृष्टि उनके कहानीकार को स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण समाज के बदलते संदर्भों को उसकी संश्लिष्टता में पूरी सक्षमता के साथ उकेरने हेतु प्रवृत्त करती है।

उनकी कहानियों में स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण राजनीतिक जीवन-पक्ष को भी बड़ी सूक्ष्मता में देखने का प्रयास है। जहाँ, ग्रामीण जीवन की स्वातंत्र्योत्तर राजनीति से प्रभावित-परिवर्तित सच्चाई को उसके व्यवहारिक रूप में चित्रित करने के क्रम में, स्वातंत्र्योत्तर राजनीति के विशद चारित्रिक परिवर्तन को विविध कोणों से देखा परखा गया है। उनकी कहानियों में स्वातंत्र्योत्तर राजनीति में नैतिकता, निष्ठा, देश-प्रेम और जनसेवा आदि मूल्यों के क्षरण को ग्रामीण जीवन-प्रसंगों के सहारे पैने व्यंग्य के साथ उजागर किया गया है। जहाँ यह, दिखलाने का प्रयास हुआ है कि स्वातंत्र्योत्तर राजनीति में पनपती दलगत संकुचितता और सत्ता लोलुपता गाँव के सामुदायिक माहौल में एक अस्थिरता को जन्म देती है। जहाँ, स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक सदिच्छा स्वरूप पंचायती-राज का लाभ पैसा और पहुँच रखने वाले ग्रामीण विशिष्ट जन (पुराना सामंत वर्ग) ही उठा पाते हैं, जबकि ग्रामीण आमजन पहले की तरह उपेक्षित रहता है। उनकी कहानियों में स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण राजनीतिक जीवन से जुड़ी लोकतंत्र, चुनाव, पुलिस और न्याय-व्यवस्था की वास्तविक तस्वीर प्रस्तुत है। जहाँ, यह देखने को मिलता है कि लोकतंत्र का मुख्य आधार चुनाव जनबल, धनबल और दाव-पेंच का पर्याय बन जाता है और ग्रामीण विशिष्ट जन, या पुराना सामंत वर्ग ही चुनाव का प्रत्याशी होता हुआ जनता के प्रतिनिधि होने का छद्म रचता है। जहाँ, लोकतंत्र और उसकी न्याय-व्यवस्था ग्रामीण आमजन को न न्याय दे पाती है और ना ही उसके प्रजातंत्रिक मूल्य-अधिकारों की सुरक्षा कर पाती है, क्योंकि पुलिस और न्याय-व्यवस्था सामर्थ्य रखने वालों द्वारा परिचालित होती है।

ग़ौरतलब है कि उनकी कहानियाँ स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण राजनीतिक जीवन का व्यवहारिक सच उजागर करती हैं, जो कहानीकार के उस तेवर को दर्शाता है जो वास्तविकता की दबी परत को उघाड़ने का साहस रखता है।

उनकी कहानियों में स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण आर्थिक जीवन को भी प्रमुखता से उजागर किया गया है। जैसा कि एक यथार्थवादी कहानीकार किसी भी समाज के आर्थिक पक्ष को ज्यादा गहराई से देखता है, वैसे ही उनका यह मानना है कि किसी भी समाज की जीवन-प्रक्रिया का मुख्य आधार

उसका आर्थिक ढाँचा होता है। उनकी कहानियाँ, दो मुख्य आर्थिक श्रेणियों में बँटे स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण समाज (उच्च वर्ग-समृद्ध शोषक वर्ग और निम्न वर्ग- शोषित सर्वहारा वर्ग) को करीब से देखने का प्रयास करती हैं। जहाँ, ग्रामीण निम्न वर्ग के रूप में बहुसंख्यक जनता की जीवन स्थितियों का निरंतर विसंगतियों की ओर बढ़ने का जिक्र है। जहाँ, जमींदारी-प्रथा के अंत की घोषणाओं के बावजूद सामंतों के अत्याचार, आतंक और शोषण के बने रहने को जमींदार-सेठ-साहूकारों के मध्य ग्रामीण निम्न वर्ग के निरंतर पिसते रहने को स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन के एक कटु सच के रूप में दर्शाया गया है। जहाँ, ग्रामीण निम्नवर्ग रूपी कृषक, भूमिहीन, खेतिहर मजदूर आदि आमजन को गरीबी और बुनियादी सुविधाओं की अभावपूर्ण जीवन-स्थितियों के मध्य अभिशप्त रूप में जीते हुए देखा गया है। जहाँ, ग्रामीण जीवन का जातिदंश, समाजिक उपेक्षा, किसानी जीवन की मार आदि का पहलू ग्रामीण निम्नवर्ग रूपी आमजन को स्वातंत्र्योत्तर परिदृश्य में गाँव के जीवन से बाहर की ओर धकेलता है। जहाँ, ग्रामीण नवोदित शिक्षित पीढ़ी के अनुकूल ग्रामीण जीवन में आधारभूत संरचना का अभाव, शहरी चकाचौंध का आकर्षण, पीढ़ियों का अंतर्द्वन्द्व आदि ग्रामीण शिक्षित पीढ़ी को गाँव के जीवन से पलयान कर शहर के अपसांस्कृतिक माहौल में मिसफिट होकर निरुद्देश्य भटेकने को बाध्य करते हैं।

मार्कण्डेय की कहानियों में उनकी गतिमान यथार्थ-दृष्टि को इस रूप में भी देखा जा सकता है कि, वे ठहरे हुए बसियाये यथार्थ का फार्मूलाबद्ध रूपायन के बजाय परिवर्तित जीवन-संदर्भों की ओर मुखापेक्षी होते हैं। इस कारण भी उनकी कहानियों में स्वातंत्र्योत्तर परिदृश्य में जमींदारी-प्रथा उन्मूलन, पंचायती राज, पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत होने वाले आर्थिक विकास-कार्यक्रम, भूदान आदि आंदोलन से उपजी नई परिस्थितियों का सच पूरी प्रामाणिकता से उजागर होता है। जहाँ, यह स्पष्ट देखने को मिलता है कि गाँव की गरीबी, बेरोजगारी और अकर्मण्यता दूर करने हेतु छोटे पैमाने के व्यवसायिक संस्थानों के विकास का आर्थिक प्रयास का लाभ गाँव के सम्पन्न-समर्थ वर्ग तथा भ्रष्ट सरकारी अधिकारी-कर्मचारीगण को मिलता है, जबकि ग्रामीण जरूरतमंद लोग उपेक्षित होते हैं। जहाँ, कृषि-कर्म को उन्नत करने का आर्थिक प्रयास उन सम्पन्न किसानों को लाभ पहुँचाता है, जो नवीन पूँजीपति बनने की ओर अग्रसर रहते हैं। यही नहीं, उनकी कहानियों में इस सच का भी उत्थापन है कि ग्रामीण आर्थिक विकास-कार्यक्रम की नीतियों में कृषि-व्यवस्था के उन्नत प्रबंधन हेतु जो कृषि-कर्म का यंत्रीकरण होता है, उससे भूमिहीनों, खेतिहर

मजदूरों के समक्ष जो नई समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, उसके निराकरण संबंधी वैकल्पिक व्यवस्था का संपूर्ण अभाव है। जो ग्रामीण छोटे किसान, भूमिहीनों, खेतिहर मजदूरों आदि ग्रामीण निम्नवर्गीय आमजन को समवेत रूप में नए तरीके से संत्रस्त करता है। उनकी कहानियों में ग्रामीण भूमिहीनों से जुड़े भूदान रूपी बहुद्देशीय आंदोलन-कार्यक्रम के जमीनी सच के रूप में उससे उत्पन्न हुयी ग्रामीण निम्नवर्गीय आमजन की आर्थिक विसंगतियों का ही जिक्र है।

मार्कण्डेय की यथार्थवादी दृष्टि स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण आर्थिक जीवन के उस सच को रखने में सक्षम दिखती है, जहाँ ग्रामीण समाज में आर्थिक विषमता का चित्र यथावत् कायम रहता है। जहाँ, ग्रामीण आर्थिक जीवन से जुड़े विभिन्न आंदोलन, कार्यक्रम और विकास नीतियाँ ग्रामीण निम्नवर्ग जैसे किसानों, भूमिहीनों, खेतिहर मजदूरों आदि को संत्रस्त ही करती हैं और उनके जीवन में भूमि से जुड़ी समस्याओं को दूर करने के बजाय उसे ज्यादा उलझा देती हैं।

मार्कण्डेय की कहानियों में स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण धार्मिक-सांस्कृतिक जीवन का पूरी विश्वसनीयता के साथ चित्रण है। उनकी कहानियों में भारतीय ग्रामीण जीवन की वह तस्वीर साक्षात् है, जहाँ धर्म का पहलू महत्त्वपूर्ण है। जहाँ, धर्म के प्रति ग्रामीणजन का दोहरा एप्रोच देखा जाता है। कहीं यह, मानवीय उच्चतर मूल्यों की प्राप्ति में, तो कहीं सदियों से चली आ रही रूढ़ियों की चिंतनहीन स्वीकृति परक अंधश्रद्धा के रूप में दिखायी देता है। मार्कण्डेय की कहानियाँ ग्रामीण जीवन में धर्म की जगह व्याप्त उसकी मिथ्या चेतना-धर्मभीरुता, ब्राह्मणवाद, तीर्थ-स्नान आदि बह्याचार, परंपरागत रूढ़ियों की चिंतनहीन स्वीकृति, भूत-प्रेत-डाइन का अंधविश्वास, तंत्र-मंत्र, झाड़-फूँक, ओझा-बाबा का चमत्कार आदि पर अपने यथार्थवादी तेवर के अनुरूप चोट करती हैं तथा इसे ग्रामीण जीवन के परिवर्तन-विकास के लिए प्रतिगामी सिद्ध करती हैं। उनकी कहानियाँ ग्रामीण सांस्कृतिक जीवन को प्रमुख मानते हुए भी उसका रोमांटिक चित्रण करने से बचती हैं। उनकी कहानियों में ग्रामीण सांस्कृतिक जीवन को प्रतीकित करने वाले बिंदुओं-प्रकृति-प्रेम, बैठक-दालान की संस्कृति, विविध-रीति-नीति, पर्व-त्यौहार-मेले और लोकगीत आदि का ग्रामीण जीवन के बुनियादी सवालों-समस्याओं की संश्लिष्टता में चित्रण है, जो उनकी यथार्थवादी छवि को जाहिर करता है।

मार्कण्डेय की कहानियों में उज्जीवित ग्रामीण जीवन का सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक-सांस्कृतिक यथार्थ स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जन-जीवन का प्रामाणिक साक्ष्य प्रस्तुत करता है। दरअसल, हिंदी कहानी-लेखन में मार्कण्डेय की कहानियाँ ग्रामीण जीवन को चित्रित करने वाली

परंपरा में वास्तविकता के सोद्देश्यपूर्ण प्रत्यांकन के कारण विशिष्ट बन कर उभरती हैं। हालांकि उनके समानांतर भैरव प्रसाद गुप्त, विवेकीराय, शिवप्रसाद सिंह, फणीश्वरनाथ 'रेणु' और रामदरश मिश्र आदि कहानीकार भी स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी-लेखन में ग्रामीण जीवन की उपस्थिति को संभव बनाने हेतु सक्रिय रहते हैं। भैरव प्रसाद गुप्त, जहाँ अपनी साम्यवादी विचारधारा के अनुरूप ग्रामीण निम्नवर्गीय लोगों की बुनियादी समस्याओं को अपनी कहानियों में सचेत ढंग से रखते हैं। वहीं, विवेकीराय स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन के अपने प्रामाणिक अनुभव को ललित निबंध का आभास देनी वाली अपनी कहानियों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। शिवप्रसाद सिंह जहाँ, ग्रामीण जीवन के उपेक्षित चरित्रों को अपनी कहानियों में संवेदनात्मक जगह देते हुए ग्रामीण जीवन के अनछुए पहलू को दर्शाते हैं। वहीं फणीश्वरनाथ 'रेणु' अपनी कहानियों में ग्रामीण जनपद को उसकी तमाम विशिष्टताओं के साथ ग्रामीण जीवन की भोली संवेदना और रागात्मकता की संगीतमय अभिव्यक्ति करते हुए ग्रामीण जीवन का चित्रण करने वाली कहानी-धारा में एक नया आयाम जोड़ते हैं। इसी तरह रामदरश मिश्र भी अपनी स्मृतियों में बसे ग्रामीण जीवन-संसार को अपनी कहानियों में उकेरते हुए स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन की नब्ज़ टटोलेते हैं।

उल्लेखनीय है कि मार्कण्डेय के उक्त समकालीन कहानीकार मार्कण्डेय के साथ स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी-लेखन में ग्रामीण जीवन का चित्रण करने वाली कहानी-धारा को सशक्त पहचान देते हुए प्रवाहमान बनाते हैं। ये समकालीन कहानीकार स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन के बुनियादी पक्ष को उठाने के क्रम में, जहाँ मार्कण्डेय से साम्य रखते हैं, वहीं उन पक्षों के प्रति इनका भिन्न ट्रीटमेट उनका मार्कण्डेय से वैषम्य जाहिर करता है। वैसे कहने की जरूरत नहीं हैं कि मार्कण्डेय की सम्पृक्ति ग्रामीण जीवन से विशेष रही है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी-लेखन में उनकी पहचान मुख्य रूप से ग्रामीण जीवन-बोध के कहानीकार की बनती है। इसके बावजूद भी वे ग्रामेतर जीवन की सचाइयों की अवहेलना नहीं करते हैं। उनकी ग्रामेतर जीवन की कहानियाँ इस बात का प्रमाण हैं। उनकी ग्राम-ग्रामेतर जीवन की कहानियों की संगति उनकी यथार्थ-दृष्टि की सर्वांगीणता को प्रतीकित करती है जिसके पीछे मार्कण्डेय की भारतीय जीवन को उसकी समग्रता में प्रस्तुत करने की मंशा है। हालांकि उनका कहानीकार ग्रामेतर जीवन के मध्यवर्गीय जीवन-बोध के सच को उसकी समग्रता और संश्लिष्टता में नहीं उभार पाता हैं, तथापि उनकी कतिपय कहानियाँ मध्यवर्गीय जीवन के उन पहलुओं को रेखांकित करने का सचेत उपक्रम करती हैं। जिनसे मध्यवर्ग

की सीमाओं का संज्ञान होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि मार्कण्डेय की ग्रामेतर जीवन की कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन बोध के सीमित सच का ही रेखांकन संभव हो पाता है।

ग्रामीण जीवन के कहानीकार के रूप में मार्कण्डेय की मुख्य पहचान के अनुरूप ही उनकी कतिपय कहानियों में ग्रामीण जीवन का बहुवचनात्मक स्वर मिलता है। उनकी कहानियों का विशेष अध्ययन इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करता है कि उनकी कहानियों में उज्जीवति यथार्थ में एक आंतरिक अन्विति है, जो अपनी संश्लिष्टता में स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन की प्रामाणिक तस्वीर हमारे सम्मुख रखती है। उनकी 'गुलरा के बाबा' में कहानी में एक युवा कहानीकार का ग्रामीण जीवन के प्रति प्रथम अनुराग अभिव्यक्त होता है। जिसके भीतर पैठने पर स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन में व्याप्त प्रेम-घृणा, आसक्ति-विरक्ति, गरीबी-लाचारी, मस्ती-आनंद और प्रकृति की स्थानीय रंगत लिए हुए मानव जीवन का ताना-बाना उजागर होता है। उनकी 'जूते' कहानी एक दलित बालक के मनोविज्ञान के केन्द्रीय कथ्य में स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण समाज का बृहत्तर पक्ष समाहित किए हुए है। जो ग्रामीण जीवन की सामाजिक-आर्थिक-विषमता, गरीबी, पलयान, जातिदंश की पीड़ा, सामंती सोच और संस्कार, आदि के सच को चित्रित करती है। उनकी 'दौने की पत्तियाँ' कहानी यह दर्शाती है कि ग्रामीण गरीब मेहनतकश वर्ग के जीवन की बुनियादी समस्याएँ स्वतंत्रता बाद भी खत्म नहीं होती हैं, बल्कि और भी जटिल हो जाती हैं। स्वतंत्रता बाद उभरी सत्ता तथा उसका शासन तंत्र ग्रामीण सामंत वर्ग से साठ-गाँठ कर ग्रामीण आर्थिक विकास-कार्यक्रम की सदिच्छाओं को लील जाता है। जिसका परिणाम यह होता है कि गाँव का गरीब भोला कोयरी जैसे मेहनतकश वर्ग का जीवन एक त्रासद मोड़ पर आ खड़ा होता है, जहाँ न उसकी एक किसान की स्वाभाविक पहचान रह पाती है और ना ही उसका गाँव में कोई अस्तित्व। कहने का तात्पर्य यह है कि 'दौने की पत्तियाँ' कहानी का भोला कोयरी का चरित्र स्वतंत्रता बाद के ग्रामीण मेहनतकश वर्ग की आगे की कहानी कहता है।

उनकी 'कल्यानमन' कहानी स्वतंत्रता बाद की परिस्थितियों में ग्रामीण जीवन के भूमि संबंधों के उलझे रहने की सचाई को कहती है। जहाँ जमींदारी प्रथा के अंत की घोषणा, ना जमींदारों के अत्याचार-शोषण का निर्मूल कर पाती हैं और ना उनकी जमीन हड़पने की साम-दाम-दण्ड-भेद की नीति को रोक पाती है। आलोच्य कहानी की मंगी (एक स्त्री) ग्रामीण मेहनतकश वर्ग की प्रतिनिधि स्वरूप अपने श्रम और साहस से सामंती अत्याचार और शोषण का सामना तो करती

है, पर अपने लोगों के संगठनाभाव के कारण टूटने की विवश हो जाती है।

उनकी 'हंसा जाई अकेला' कहानी ग्रामीण जीवन के अनछूए प्रसंग के रूप में व्यक्ति के अकेलपेन ही कथा के भीतर से ग्रामीण जीवन के विविध स्वर और प्रश्न को गंभीरता से उठाती है। इसी कारण 'हंसा जाई अकेला' कहानी की संश्लिष्टता में दलित-विमर्श, स्त्री-विमर्श और राजनीति-विमर्श का स्वर समवेत रूप में सुनाई पड़ता है। उनकी 'आदर्श कुक्कुट-गृह' कहानी ग्रामीण निम्नवर्गीय-पात्र रमजान के माध्यम से स्वातंत्र्योत्तर आर्थिक-विकास-कार्यक्रम के रूप में छोटे व्यवसायिक संस्थानों के विकास की वास्तविकता को उभारती है। जहाँ यह स्पष्ट देखने को मिलता है कि सरकारी योजनाएँ सिर्फ कागजी आदेशों में ही शोभा पाती हैं और जिसकी आड़ में सत्ता तथा उसका भ्रष्ट तंत्र सरकारी धन का अपव्यय करता है। जिसका परिणाम यह है कि ग्रामीण निम्नवर्गीय गरीब रमजान जैसों के लिये यह आर्थिक विकास-कार्यक्रम एक विनाश-कार्यक्रम बन जाता है।

उनकी 'घुन' कहानी सातवें दशक की मूल्यहीन परिस्थितियों के मध्य व्यक्ति के विवेक संकट को ग्रामीण जीवन-प्रसंगों के माध्यम से उकेरने की चेष्टा करती है। जहाँ यह स्पष्ट देखने को मिलता है कि स्वातंत्र्योत्तर परिस्थितियों में भी ग्रामीण जीवन की बुनियादी समस्याओं का यथावत् रहना, जमींदार-साहूकार आदि वैयक्तिक परक शोषण संस्थानों का बना रहना, छुआ-छूत जातिगत भेद-भाव की मानसिकता का व्याप्त रहना, शोषक वर्ग की धनलिप्सा और संवदेनहीनता का समाज के नैतिक अवमूल्यन को प्रश्रय देना आदि ज्वलंत सच हैं। उनकी 'बीच के लोग' कहानी स्वातंत्र्योत्तर परिदृश्य के सामाजिक आर्थिक वैषम्य पूर्ण ग्रामीण समाज के भीतर पल रहे तीव्र वर्गीय असंतोष और संघर्ष को उकेरती है, जहाँ समाज की यथास्थिति को बनाए रखने वाले विचार और शक्तियों को हटाने की बात ग्रामीण समाज के भीतर से पहले-पहल उठती है। इस तरह मार्कण्डेय की उक्त तमाम कहानियों की आंतरिक संगति स्वातंत्र्योत्तर दौर के ग्रामीण भूमि-संबंध के उलझे रहने तथा इस भूमि संबंध से प्रत्यक्ष-परोक्ष जुड़े रहने वाले किसान भूमिहीन, खेतिहर मजदूर आदि श्रमशील वर्ग के जीवन की बुनियादी समस्याओं के जटिल होने का सच बयान करती हैं।

दरअसल, मार्कण्डेय की उक्त कहानियों में प्रेमचंद के बाद का गाँव और उसकी समस्याएँ जीवंत हो उठती हैं। जहाँ स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण समाज का सामाजिक, राजनीतिक,

आर्थिक और धार्मिक-सांस्कृतिक पक्ष अपनी संश्लिष्टता और सक्षमता में उजागर होता है। जहाँ यथार्थ को उसके बदलते तेवर के साथ पकड़ने की चेष्टा होती है। जहाँ यथार्थ को एकरेखीय और रोमांटिक होने से बचाने का सचेत प्रयास है।

मार्कण्डेय की कहानियों का शिल्प भी उनकी यथार्थवादी पहचान के तद्नुरूप होता है। जहाँ उनका कहानीकार ना शिल्प की अवहेलना करता है और ना ही उसके प्रति अतिरिक्त सजगता जाहिर करता है। उनकी कहानियों का शिल्प कथा, भाषा और शैली संयोजना के रूप में उनकी यथार्थवादी पहचान को स्थिर करता है। जहाँ ना उनकी कहानियों में कथानक का ह्रास होता है और ना ही उन्हें काल्पनिक चरित्र गढ़ने की कवायद करनी पड़ती है। बल्कि उनकी कहानियाँ ग्रामीण लोक शब्दावली, बोली, मुहावरों, लोकोक्तियों-उपमानों आदि की पात्रानुकूल भाषा की छौंक लिए ग्रामीण जीवंत पात्रों की सृष्टि करती हैं। उनकी कहानियों की वर्णनपरकता, चित्रात्मकता, सांकेतिकता, व्यंग्यात्मकता आदि पहलूओं से संस्पर्शित होकर ग्रामीण जीवन के कथ्य और चरित्र को उसकी परस्पर संगति में पूरी सक्षमता से चित्रित करती है। जो उनकी कहानियों के यथार्थवादी शिल्प का परिचायक है।

इस प्रकार 'मार्कण्डेय की कहानियों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ' विषयक प्रस्तुत शोध-प्रबंध में मार्कण्डेय की कहानियों का मूल्यांकन तथा सांप्रतिक ग्रामीण जीवन की दारुण और जटिल स्थितियों को समझने का एक प्रयास है। यहाँ मार्कण्डेय की कहानियों में निरूपित ग्रामीण जीवन को समग्रता में विवेचित-विश्लेषित करने के क्रम में उनके कहानीकार की मूल संवेदना (स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन और समाज के बदलते संदर्भों को पैनी निगाह से देखते हुए उसकी वास्तविक उपस्थिति को स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी-लेखन में संभव बनाना) तथा उनकी यथार्थ-दृष्टि (रचना या कला को जीवन से जोड़ते हुए यथार्थ को रचना-आलोचना का मानदण्ड स्थिर करना तथा उसे यथास्थिति के पार देखना आदि) उजागर होती हैं।

परिशिष्ट

संकेत-सूची

संकेत-सूची

1. डॉ.–	डॉक्टर
2 .प्रा.-	प्राध्यापक
3. प्रो.–	प्रोफेसर
4. पृ.–	पृष्ठ
5. पृ. सं.-	पृष्ठ संख्या
6. प्र. सं.–	प्रथम संस्करण
7. सं.-	संस्करण
8. प्रा. लि.–	प्राइवेट लिमिटेड

संदर्भ ग्रंथ सूची

अ.आधार ग्रंथ

कहानी-संग्रह :

1. मार्कण्डेय की कहानियाँ : लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1, प्र.सं.: 2002

2. हलयोग : मार्कण्डेय की असंकलित कहानियाँ : लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद, प्र.सं. (पैपर बैक): 2012

उपन्यास :

1. अग्निबीज : नया साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद-1, संस्करण:2000

आलोचना :

1. कहानी की बात : लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, प्रथम संस्करण:1984

आ. सहायक ग्रंथ

1. अज्ञेय, सम्पूर्ण कहानियाँ, राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरी गेट दिल्ली, संस्करणः 2008

2. (डॉ.) अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं. :2009

3. अवस्थी, डॉ. देवीशंकर, (संपादक), नयी कहानीःसंदर्भ और प्रकृति, राजकमल प्रकाशन, प्रा.लि., नई दिल्ली, प्र.सं. :1973

4. अस्थाना, डॉ. ज्ञान, हिंदी उपन्यासों में ग्राम समस्याएँ, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा-2, प्र.सं.:1979

5. आंजनेय, डॉ. अनिल कुमार (संपादक), सृजन यज्ञ जारी है, अखिल भारतीय अन्तरजनपदीय परिषद्, उजियार, प्र.सं.: 2000

6. उपाध्याय, रमेश, कहानी की समजशास्त्रीय समीक्षा, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.: 1999

7. कमलेश्वर, नयी कहानी की भूमिका, ईशान प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं.: 1978

8. काले, अनिल विश्वनाथ, रामदरश मिश्र के उपन्यासों में ग्रामीण परिवेश, चिंतन प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं.: 2007

9. कुमार, डॉ. राजेन्द्र, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में ग्राम्य जीवन और संस्कृति, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, प्र.सं.: 1988

10. गुप्त, डॉ. ज्ञानचंद, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास और ग्रामचेतना, अभिनव प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.:1974

11. गुप्त, विश्वम्भरदयाल, ग्रामीण समाजशास्त्रः साहित्य के परिप्रेक्ष्य में, सीता प्रकाशन, मोतीबाजार, हाथरस-1, संस्करणः 1980

12. चौहान, डॉ. वी.पी., रामदरश मिश्र के कथा साहित्य में ग्राम्य जीवन, चिंतन प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं.:2004

13. जैन, डॉ. प्रेमलता, समाजवादी यथार्थवाद और हिंदी कथा साहित्य, नवचेतन प्रकाशन, दिल्ली, संस्करणः 2004

14. जैनेन्द्र, साहित्य का श्रेय और प्रेय, पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.: 1961

15. ठाकुर, खगेन्द्र और सिंह, नामवर (संपादक), प्रेमचंद प्रतिनिधि संकलन, नेशनल बुक ट्रस्ट, इण्डिया, प्र.सं.: 2006

16. त्रिपाठी, प्रकाश (संपादक), मार्कण्डेय : परंपरा और विकास, वचन पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद, प्र.सं.:2010

17. दुबे, श्यामचरण, भारतीय ग्राम, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, द्वि संस्करणः 1996

18. देसाई, ए. आर., भारतीय राष्ट्रवाद की अधुनातन प्रवृत्तियाँ, मैकमिलन एण्ड कम्पनी, दिल्ली, प्र.सं.: 1978

19. पाटील, रेखा वसंत, समांतर कहानी में यथार्थवाद, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, संस्करणः2005

20 पाण्डेय, डॉ. भवदेव (संपादक), हिंदी कहानी का पहला दशक, रेमाधव पब्लिकेशन्स, प्रा.लि., नयी दिल्ली, प्र.सं.: 2006

21. प्रकाश, आनंद, हिंदी कहानी की विकास प्रक्रिया, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1, प्र. सं.: 1997

22. प्रसाद, डॉ. सुरेन्द्र, मार्कण्डेय का रचना संसार, क्वालिटी बुक्स (पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स), कानपुर (उ.प्र.), प्र.सं.: 2001

23. प्रियदर्शिनी, डॉ. सुषमा (संपादक), हिंदी उपन्यास, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.: 1983

24. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करणः 2001

25. फास्ट, हावर्ड, साहित्य और यथार्थ (अनुवादःसुषमा विजय), अरूणोदय प्रकाशन, दिल्ली, संस्करणः1993

26. बनवासी, कैलाश, बाजार में रामधन, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, प्र.सं.: 2004

27. बालकृष्णन, सुधा, हिंदी लेखिकाओं की कहानियों में नारी के बदलते स्वरूप (शोध ग्रंथ), संजय बुक सेन्टर, गोलघर, वाराणसी, प्र.सं.: 1977

28. भस्मे, डॉ. दिलीप, विवेकीराय के साहित्य में ग्रामांचलिक जनजीवन का चित्रण, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं.:2006

29. मधुरेश, हिंदी कहानी का विकास, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र. सं.: 1996

30. मधुरेश, नयी कहानीः पुनर्विचार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली, प्र.सं.: 1999

31. माली, प्रा. रामचंद्र, श्रीकांत वर्मा की कहानियों में यथार्थबोध, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्र.सं.: 1997

32. मिश्र, डॉ. भगीरथ, काव्यशास्त्र, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण (चतुर्दश), 2001

33. मिश्र, डॉ. रामदरश और मोहन, डॉ. नरेन्द्र, हिंदी कहानीः दो दशक की यात्रा, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र.सं.: 1970

34. मिश्र, रामदरश, इकसठ कहानियाँ, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.: 1984

35. मिश्र, रामदरश, चर्चित कहानियाँ, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं.: 2001

36. मिश्र, डॉ. वर्षा, मिथिलेश्वर की कहानियों में ग्रामीण यथार्थ, क्वालिटी बुक्स, कानपुर, प्र.सं.: 2004

37. मिश्र, डॉ. शिवकुमार, कहानीकार प्रेमचंद : रचना दृष्टि और रचना शिल्प, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1, प्र.सं.: 2002

38. मिश्र, डॉ. शिवकुमार, यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र.सं.: 2009

39. मिश्र, डॉ. सत्यदेव, पाश्चात्य काव्यशास्त्रः अधुनातन संदर्भ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद-1, प्र.सं.: 2003

40. यादव, राजेन्द्र (संपादक), एक दुनिया : समानांतर, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा. लि., दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करणः 1993

41. यादव, सुरेन्द्र प्रताप, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास में ग्रामीण यथार्थ और समाजवादी चेतना, भावना प्रकाशन, परपड़गंज, दिल्ली-1, प्र.सं.: 1992

42. यायावर, भारत (संपादक), रेणु रचनावली-1, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्र.सं.:1995

43. राय, गोपाल, हिंदी कहानी का इतिहासः 1900-1950, राजकमल प्रकाशन प्रा.लि., नई दिल्ली, प्र.सं.: 2008

44. राय, गोपाल, हिंदी कहानी का इतिहास-2 : 1951-1975, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, प्र. सं.: 2011

45. राय, डॉ. विवेकी, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कथा साहित्य और ग्राम जीवन, लोकभारती प्रकाशन,

इलाहाबाद, प्र.सं.: 1974,

46. राय, विवेकी, कालातीत, पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.: 1982

47. राय, विवेकी, नयी कोयल, राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं.: 1984

48. राय, विवेकी, बेटे की बिक्री, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.: 1984

49. राय, विवेकी, जीवन परिधि, राजीव प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र.सं.: 1990

50. राय, विवेकी, श्रेष्ठ आंचलिक कहानियाँ, कादम्बरी प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.: 1996

51. रेणु, फणीश्वरनाथ, आदिम रात्रि की महक, अनुपम प्रकाशन, पटना, प्र.सं.: 1967

52. लाल, डॉ. लक्ष्मीनारायण (संपादक), कथा भारती, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण:2005

53. वर्मा, निर्मल और गोयनका, कमल किशोर (संपादक), प्रेमचंदःरचना संचयन, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली, संस्करणः 1994

54. वर्मा, डॉ. रागिनी, फणीश्वरनाथ 'रेणु' और उनका कथा साहित्य, विश्वविद्यालय, वाराणसी, प्र.सं.: 2002

55. वाजपेयी, आचार्य नंददुलारे, आधुनिक हिंदी साहित्य, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृतीय संस्करणः 2018 वि.

56. शर्मा, डॉ. यज्ञदत्त (संपादक), प्रबंध सागर, अक्षरम् प्रकाशन, सोनपत, प्र.सं.: 1989

57. शर्मा. डॉ. रामविलास, कथा विवेचना और गद्य शिल्प, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्र.सं.: 1982

58. शर्मा, डॉ. सुरेश (संपादक), 'यथार्थ यथास्थिति नहीं', वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करणः 1965

59. (डॉ.) सत्यकाम, आलोचनात्मक यथार्थवाद और प्रेमचंद, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि., नयी दिल्ली, प्र.सं.: 1994

60. (डॉ.) सत्यकाम (संपादक), माटी की महक, अभिरूचि प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.: 1994

51. (डॉ.) सत्यकाम, नयी कहानीः नए सवाल, अनुपम प्रकाशन, पटना, प्र.सं.: 2002

62. सारस्वत, डॉ. अपर्णा, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी काव्यधारा की मूल्य चेतना, सामयिक बुक्स, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र.सं.: 2010

63. सांगोले, डॉ. शिवाजी, हिंदी कथा साहित्य में ग्रामीण चेतना (भैरव प्रसाद गुप्त के परिप्रेक्ष्य में), समता प्रकाशन, कानपुर (देहात) प्र.सं. : 2006

64. सिंह, जवाहर, हिंदी के आंचलिक उपन्यासों की शिल्प-विधि, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली-2, प्र.सं.: 1986

65. सिंह, तेज, नागार्जुन का कथा साहित्य, पराग प्रकाशन, दिल्ली, प्र.सं.: 1993

66. सिंह, डॉ. त्रिभुवन, हिंदी उपन्यास और यथार्थवाद, हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, बनारस, प्र.सं.: दीपावली 2010 वि.

67. सिंह, डॉ. पुष्पपाल, समकालीन कहानीः युगबोध का संदर्भ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्र.सं.: 1986

68. सिंह, राजकुमारी, हिंदी तथा अंग्रेजी के आंचलिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं.: 1993

69. सिंह, शिवप्रसाद, आर पार की माला, सरस्वती मंदिर, काशी, प्र.सं.: 1955

70. सिंह, शिवप्रसाद, चर्चित कहानियाँ, सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करणः 1997

71. सिन्हा, डॉ. किशोर, हिंदी की आंचलिक कहानी-परंपरा और प्रयोग, जिज्ञासा प्रकाशन, पटना, प्र.सं.: 2002

72. सिन्हा, डॉ. सुरेश, नयी कहानी की मूल संवेदना, भारतीय ग्रंथ निकेतन, दिल्ली, प्र.सं.: 1966

73. सिन्हा, डॉ. सुरेश, हिंदी उपन्यास, लोकभारती प्रकाशन, कानपुर, प्र. सं.: 1981

पत्र-पत्रिकाः

1. कथा (मार्कण्डेय स्मृति अंक), अंक-15, मार्च 2011

2. प्रतिमान, अंक-4, नवम्बर 1978

3. धर्मयुग, अंक-24, मई 1981

4. सरिता, अप्रैल 1, 1981

5. हंस, अगस्त अंक, 2006

6. हिन्दुस्तानी (मार्कण्डेय पर एकाग्र), त्रैमासिक, भाग-71, अंक-3 (जुलाई-सितम्बर), 2010

रिपोर्टः-

पाकेट बुक ऑफ़ इकोनोमिक इन्फॉर्मेशन, भारत सरकार, वित्त मंत्रालय द्वारा प्रकाशित, वर्षः 1970

कोश

संस्कृत कोश :

सिद्धांत कौमुदी-तिड़-तरवंड, चुरादि प्रकरण, भवादि प्रकरण

हिंदी कोश :

1. हिंदी शब्द सागर, खण्ड 1, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणासी 1965
2. हिंदी शब्द सागर, खण्ड 8, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणासी, 1965
3. वर्मा, धीरेन्द्र (संपादक), हिंदी साहित्य कोश, भाग-1, ज्ञानमण्डल लि. वाराणसी, तृ.सं.: 1985
4. वर्मा, डॉ. रामचंद्र (संपादक) मानक हिंदी कोश, साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, प्र.सं. वर्ष 1965

अंग्रेजी कोश :

1. कडडन, जे.ए. (Cuddon) ए. डिक्शनरी ऑफ लिटरेरी टर्म्स, इंडियन बुक कम्पनी, 36 सी कनाट प्लेस, नयी दिल्ली तथा आन्द्रे दोरत्स लि., 105, ग्रेट रसेल स्ट्रीट, लंदन, डब्ल्यू. सी. आई., 1977

अनुक्रमणिका

लेखकानुक्रमणिका

1. अमरकांत 310, 313, 359

2. अज्ञेय 67, 68

3. इलियट जार्ज 14

4. कमलेश्वर 294

5. कुमार राजेन्द्र 172, 179

6. गंगाधर मधुकर 77, 78

7. गुप्त ज्ञानचंद 131, 162

8. गुप्त भैरव प्रसाद 72, 219–229

9. गुलेरी चंद्रधर शर्मा 61

10. गोर्की 19, 27

11. गोस्वामी किशोरीलाल 55

12. गौरीनाथ 79, 81

13. घोष गिरिजा कुमार 56

14. चौधरी सुरेन्द्र 284

15. चौहान वी. पी. 125, 133, 148, 150, 161, 184, 290

16. जयनंदन 81

17. जैन प्रेमलता 11, 27, 36

18. जैनेन्द्र 67, 68, 355

19. द्विवेदी हजारी प्रसाद 13

20. देसाई ए. आर. 96, 176

21. पाण्डेय भवदेव 56, 57, 59, 61

22. पुष्पा मैत्रेयी 81

23. प्रसाद जयशंकर 61, 63, 69

24. प्रेमचंद 15, 53, 60, 62, 63, 74, 92, 93, 278, 279, 315, 319, 350

25. फास्ट हावर्ड 3, 51

26. फिशर अर्नस्ट 5

27. बनवासी कैलाश 81

28.बंगमहिला (राजबाला घोष) 55, 59

29. भस्मे दिलीप 102, 109, 195

30. भारती धर्मवीर 379

31. मधुरेश 55, 259, 277

32. माली रामचंद्र 281, 294

33. मिथिलेश्वर 81

34. मिश्र मधुमंगल 60-61

35. मिश्र रामदरश 71, 73, 76, 235, 260-268

36. मिश्र शिवकुमार 5, 6, 9, 19, 28-30, 35, 52, 64

37. यशपाल 36, 67, 69

38. युंग 23

39. राय गोपाल 52, 54, 57, 60, 73, 162, 267

40. राय विवेकी 59, 72, 73, 204, 230-239, 313

41. रेणु फणीश्वरनाथ 59, 71, 74, 248–260

42. लाल लक्ष्मीनारायण 63

43. लूकाच 5, 6, 8, 21, 28, 367

44. वर्मा श्रीकांत 365

45. वाजपेयी गिरिजादत्त 60

46. वाजपेयी नंददुलारे 280

47. विजयकांत 81

48. शर्मा रामविलास 331, 388

49.शिप्ले 4, 5

50. शिवमूर्ति 79

51. शुक्ल ऋता 81

52. संजीव 81

53. सत्यकाम 3, 15, 16, 18, 19, 52, 53, 56, 78

54. सप्रे माधव राव 57

55. सहाय रघुवीर 7

56. सिंह तेज 365

57. सिंह त्रिभुवन 13, 16, 22, 23

58. सिंह मधुकर 77, 78

59. सिंह शिवप्रसाद 71, 74, 75, 239–248

60. सिन्हा सुरेश 24, 25, 35, 99, 109, 367

61. सुदर्शन 62

62. हाकिन्स 11